अंक : १३२

अक्तूबर - दिसंबर २०१५

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

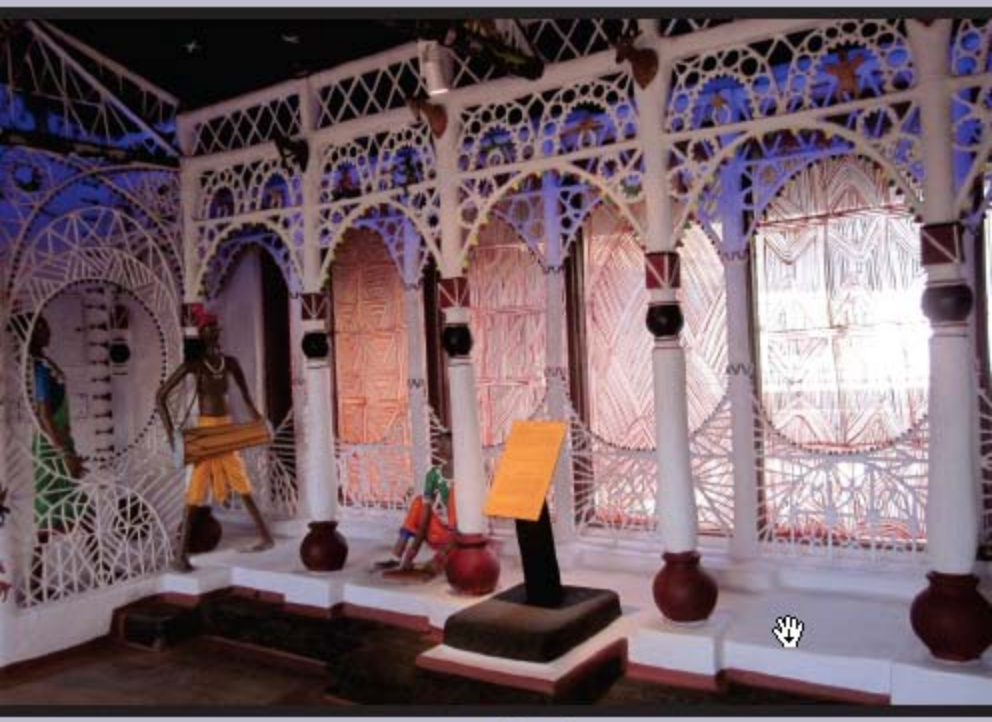

कहानियां

डॉ. पुष्पा सक्सेना • डॉ. रमाकांत शर्मा • राजासिंह

डॉ. लता अग्रवाल • नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

आमने-सामने
नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

सागर-सीपी
सुभाष काबरा

१५ रुपये

अक्तूबर-दिसंबर २०१५
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
अशोक वशिष्ठ
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@yahoo.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। इंतज़ार - **डॉ. पुष्पा सक्सेना**
।।१५।। भीतर दबा सच - **डॉ. रमाकांत शर्मा**
।।२१।। वरदहस्त - **राजासिंह**
।।२९।। इकत्तीस का महीना - **डॉ. लता अग्रवाल**
।।३३।। बिछावन - **नीतू सुदीप्ति "नित्या"**

लघुकथाएं

।।२०।। दौड़ / **मधुदीप**
।।२४।। खेल / **सुरेश सौरभ**
।।३५।। चोर-पुलिस / **योगेंद्र शर्मा**
।।४४।। चुनौती / **ओम प्रकाश बजाज**

कविताएं / गीत / ग़ज़लें

।।२४।। कविता / **डॉ. अमरेंद्र मिश्र**
।।३२।। ग़ज़ल / **चंद्रसेन विराट**
।।३८।। कविता / **शिव डोयले**
।।४४।। ग़ज़ल / **नवीन माथुर "पंचोली"**
।।४४।। गज़ल / मंजुला उपाध्याय "**मंजुल**"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३९।। "आमने-सामने" / **नीतू सुदीप्ति "नित्या"**
।।४५।। "सागर-सीपी" / **सुभाष काबरा**
।।५०।। "बाइस्कोप" **(सविता बजाज)** / **जावेद सिद्दीकी**
।।५२ ।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : म. प्र. आदिवासी संग्रहालय, भोपाल
चित्रकार : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह वर्ष २०१५ का अंतिम अंक है. "कथाबिंब" का यह १३२ वां अंक पाठकों तक जनवरी के पूर्वार्ध में पहुंचेगा. इस प्रकार धीरे-धीरे ही सही, कुछ सीमा तक पत्रिका का प्रकाशन नियमित हो सका है. पिछले १५-२० सालों से पत्रिका के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं की गयी. किंतु हर अंक के साथ छपाई का व्यय निरंतर बढ़ता रहा है. इस कारण विवश होकर, वर्ष २०१६ के प्रथम अंक के साथ एक प्रति का मूल्य २० रु. किया जा रहा है, त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क २०० रु. तथा आजीवन शुल्क ७५० रु. होगा. पूर्व में बने आजीवन सदस्यों को अतिरिक्त शुल्क भेजने की आवश्यकता नहीं है. सभी को पत्रिका पूर्ववत मिलती रहेगी.

वर्ष २०१५ के चारों अंकों में, कुल मिलाकर २० कहानियां प्रकाशित हुई हैं. *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१५"* के लिए अभिमत भेजने हेतु"मत-पत्र" पृष्ठ ५६ पर छपा है. पाठकों से निवेदन है कि मत-पत्र के माध्यम से, पोस्ट कार्ड अथवा मेल द्वारा, अभिमत का अपना क्रम भेजें. पाठकों से अनुरोध है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में इस आयोजन में भाग लें."कथाबिंब" ही एक मात्र पत्रिका है जो पाठकों के सहयोग से जनतांत्रिक तरीक़े से लेखकों को पुरस्कृत करती है. वर्ष के सभी अंक आप "कथाबिंब" की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं. वेबसाइट के अलावा "कथाबिंब" को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है. आवरण पर नामित लेखकों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें. इससे आपकी रचनाओं की"पहुंच" का दायरा और व्यापक होगा. यह विदित ही है कि"कथाबिंब" मुंबई की *"संस्कृति संरक्षण संस्था"* के सौजन्य से प्रकाशित होती है. पूरे वर्ष में संस्था जनसामान्य से जुड़े अनेक कार्यक्रम आयोजित करती है. ३१ जनवरी २०१६ को *"डिज़ीटल इंडिया पहल में हिंदी व अन्य भाषाओं की भूमिका"* विषय पर "सी-डेक" के संयुक्त तत्वावधान में संस्था एक अर्ध-दिवसीय संगोष्ठी कर रही है. संगोष्ठी में भाग लेने के इच्छुक हमसे संपर्क करें. एक अन्य सूचना : अगले अंक से मुंबई की रचनाकार, विदुषी डॉ. राजम नटराजन पिल्लै "कथाबिंब" से जुड़ रही हैं. अवश्य ही पत्रकारिता के क्षेत्र में आपके अनुभवों से पत्रिका को लाभ मिलेगा.

●

अब कुछ इस अंक की कहानियों के बारे में – पहली कहानी *"इंतज़ार"* की लेखिका डॉ. पुष्पा सक्सेना अमेरिका निवासी हैं. "कथाबिंब" के पाठक आपकी कई कहानियां पढ़ चुके हैं. बरसों अमेरिका में रहने के बाद भी प्रवासी परिवार के सदस्य अपनी संस्कृति और सभ्यता को नहीं छोड़ना चाहते. लाइलाज़ कैंसर से ग्रसित इरा पहले अपनी बीमारी छुपाती है फिर अपने पति और बच्चों को हिम्मत बंधाती है कि उसके न रहने पर दुख नहीं करना है. *"भीतर दबा सच"* के लेखक डॉ. रमाकांत शर्मा भी "कथाबिंब" के नियमित लेखक हैं. भाभी ने सौतेले देवर को बोझ समझ कर हमेशा नीचा दिखाया लेकिन पति के न रहने पर मज़बूर होकर उसी देवर के पास आना पड़ा. तो अब कैसे कहें कि कहीं और कोई ठिकाना नहीं है. राजासिंह की *"वरदहस्त"* पारिवारिक संबंधों की कहानी है. बड़े भाई मरणासन्न हैं. पढ़ाई-लिखाई कभी की नहीं, न ही पुश्तैनी पंडिताई का काम रास आया. हां, दबंगई में वे सबसे आगे रहते थे. छोटा भाई मलय उनकी छत्रछाया में पढ़ लिखकर आगे बढ़े इसके लिए कुछ भी करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे. मलय भी आज सब कुछ करने के लिए तत्पर है किंतु वह अंततः दादा को बचा नहीं पाया. आज यह आम समस्या है कि बच्चे अपने वृद्ध माता-पिता को साथ नहीं रखना चाहते. अगली कहानी *"इकत्तीस का महीना"* (डॉ. लता अग्रवाल) की कांता ने पति के न रहने पर दोनों लड़कों के लालन-पालन में कोई कसर नहीं रखी. बड़े चाव से घर में बहुएं आयीं पर उन्होंने जल्दी ही अपना चूल्हा अलग कर लिया. महीने में पंद्रह दिन एक बहू सास को खाना खिलाती थी और पंद्रह दिन दूसरी बहू. अगर महीना ३१ का हुआ तो कांता उस दिन उपवास रख लेती थी, यही एक आसान उपाय था. अपने आत्मकथ्य के माध्यम से नीतू सुदीप्ति "नित्या" पाठकों से रूबरू हैं. अपनी कहानी *"बिछावन"* में नीतू ने बड़ी मार्मिकता से कामवाली बिमली के संघर्ष को उजागर किया है. बिमली अपने पति को बेहद चाहती है. बिमली के बताने पर घर की मालकिन गौतमी सुहागिनों जैसा श्रंगार करने लगी थी. एक दिन बिमली के काम पर न आने से गौतमी चिंतित हो जाती है. जो कारण सामने आता है उसकी कल्पना करना किसी के लिए भी असंभव था.

●

संसद का एक और अधिवेशन बिना किसी विशेष काम-काज़ के ख़तम हो गया. सरकार का कहना है कि कॉन्ग्रेस अनावश्यक मुद्दे उठाकर सहयोग नहीं करना चाहती केवल उसे रोज़ हंगामा करना है, किसी भी मुद्दे पर वह बहस नहीं करना चाहती. कॉन्ग्रेस का कहना है कि नयी सरकार को अनुभव नहीं है, उसे संसद चलाना नहीं आता. इस घींगामुश्ती में नुकसान देश का होता है. संसद की कार्यवाही ज़ारी रखने के लिए एक मिनट में २.५ लाख रुपयों का ख़र्चा आता है. यानी एक घंटे में १५ करोड़ और पूरे दिन में लगभग १५० करोड़. यदि अधिवेशन के दिनों की संख्या २० मान लें तो

३००० करोड़ का व्यय! दरअसल १३१ साल पुरानी कॉन्ग्रेस अपनी हार को पचा नहीं पा रही है. लोकसभा चुनाव में उसके मात्र ४४ (अब ४५) सांसद चुनकर आये. यह संख्या विपक्ष के नेता का दर्जा दिलाने के लिए भी पर्याप्त नहीं थी. २०१४ के लोकसभा चुनावों के परिणाम कई मायनों में अभूतपूर्व थे. पिछले ३० सालों में किसी दल या गठबंधन को इतना बहुमत नहीं प्राप्त हुआ. दस साल के कॉन्ग्रेस के राज्य से त्रस्त आयी जनता के सामने एक स्पष्ट विकल्प दिखाई दे रहा था. धर्म और जाति से ऊपर उठकर अन्य लोगों के अलावा युवाओं ने मोदी को बढ़-चढ़कर वोट दिया. लेकिन दिल्ली के चुनाव के समय अल्पसंख्यकों को लगा कि कहीं ग़लती हो गयी और जो वोट सामान्यतया कॉन्ग्रेस को जाता रहा है वह पूरा का पूरा "आप" को मिला.

महाराष्ट्र, राजस्थान, हरियाणा, आंध्र प्रदेश और जम्मू व कश्मीर की सफलता के बाद भाजपा की नेतृत्व वाले राजग को लगा कि बिहार को जीतना मुश्किल नहीं होगा. लेकिन यहां एक बार फिर जातीय समीकरण अन्य सभी कारकों के आगे निकल गया. दादरी, पाटीदार आंदोलन, मोहन भागवत के बयान या असहिष्णुता-सहिष्णुता की बहस ने भी कुछ सेंध अवश्य लगायी होगी किंतु मुख्यतः लालू और नीतीश का वोट बैंक एकजुट होना कारण रहा. फ़ायदा कॉन्ग्रेस को मिला. आमसभा के चुनाव के समय मोदी के चुनाव-प्रचार का पूरा कार्य बिहारी बाबू प्रशांत किशोर के हाथों में था. प्रशांत ही मोदी के रथ के सारथी थे. लेकिन अमित शाह ने प्रशांत किशोर का पत्ता काट दिया. इन्हीं प्रशांत किशोर ने बिहार में महागठबंधन के प्रचार की बागडोर संभाली. गुजरात की तरह ही यहां भी प्रशांत ने हर सीट का "माइक्रो मैनेज़मेन्ट" किया. पूरा प्रचार नीतीश केंद्रित हो गया - *"हर घर दस्तक"* और *"इस बार फिर नीतीशे"* नारों ने जादुई काम किया. हमारी समझ से मोदी द्वारा बिहारियों के "डीएनए" पर कटाक्ष करना भी काफ़ी उल्टा पड़ गया. क्योंकि किसी भी वर्ग या समुदाय की अस्मिता को चोट पहुंचाकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता.

इस पर भी ग़ौर करना चाहिए कि बिहार के चुनाव ख़तम होते ही "बुद्धिजीवियों" ने पुरस्कार लौटाना बंद कर दिया. असहिष्णुता को लेकर अब कोई चिंतित नहीं है. असहिष्णुता का झगड़ा पूना की फ़िल्म व टेलीविज़न इंस्टीट्यूट से शुरू हुआ. यदि कोई मार्क्सवादी इसका चैयरमैन बना दिया जाता तो किसी को कोई दिक्कत नहीं होती. ज़ेहन में दो सवाल आते हैं कि इस संस्थान का अध्यक्ष नियुक्त करना क्या सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं है? दूसरा यह कि क्या सारे संस्थानों के अध्यक्षों, निदेशकों, शिक्षकों की नियुक्ति विद्यार्थियों की रजामंदी से होनी चाहिए? इसी संदर्भ में —टी. वी. पर पेप्सी का एक विज्ञापन आता है ... फ़िल्म व टेलीविज़न इंस्टीट्यूट के कुछ छात्र सत्याग्रह कर रहे हैं, छात्रों की दाढ़ी बढ़ी हुई है. इधर पेप्सी की एक गाड़ी आकर पास खड़ी होती है. एक छात्र प्यास बुझाने के लिए गटागट पेप्सी लेकर पीने लगता है. पूछने पर कहता है, "पेप्सी थी पी गया." पूरे आंदोलन पर इससे सटीक व्यंग नहीं हो सकता.

देश में अपराधों की संख्या बढ़ी है. दिल्ली तो जैसे अपराधों की राजधानी हो गयी है. अख़बार और समाचार बुलेटिन बलात्कारों के समाचारों से भरे रहते हैं. ज़रा-ज़रा सी बात में रास्ता रोको, वाहनों में आग लगा देना. हत्या, अपहरण, गोली चला देना. अपराध पहले भी होते रहे हैं किंतु आज हर किसी के पास कैमरे वाला मोबाइल फ़ोन है, झट बिना जांच-परख के प्रत्येक घटना "ब्रेकिंग न्यूज़" बन जाती है. कुछ वर्ष पूर्व मैं दुबई घूमने गया था. वहां ग़ौर किया कि अख़बार में अपराधियों के नाम या वे किस देश के, धर्म या जाति के हैं इसका उल्लेख नहीं होता. नाम के स्थान पर समाचार में अपराधी के मात्र पहले दो अक्षरों का उल्लेख रहता है ... "सी. जे. और पी. के. को पुलिस ने कल चोरी करते रंगे हाथ पकड़ा और आगे की कार्यवाही के लिए जेल में डाल दिया." दोनों दलित थे, हिंदू या अल्पसंख्यक थे, भारतीय, पाकिस्तानी या फिर चीनी थे कुछ मालूम नहीं पड़ता. यदि हमारे देश में भी इसी तरह की संहिता लागू की जाये तो कई मामलों में जातीय और धार्मिक उन्माद और दंगों से बचा जा सकता है. इसका एक सकारात्मक परिणाम यह भी हो सकेगा है कि राजनीतिक दल अपनी रोटियां नहीं सेंक पायेंगे.

●

एक और साल गुज़रने को है. नया साल नयी चुनौतियां लेकर आयेगा. अगर आप निराशावादी हैं तो गिलास आधा खाली है और आशावादी तो गिलास आधा भरा है. भूकंप, अतिवृष्टि, बाढ़ या सूखे के सामने हमारा वश नहीं चलता. लेकिन आज पूरे विश्व के सामने "आईएसआईएस" का ख़तरा महाविनाश के रूप में दिख रहा है. इससे सब देशों को मिलकर निपटना होगा तभी पार लग सकेगा. जहां तक भारत का प्रश्न है राष्ट्र हित में सभी राजनीतिक दल कम से कम कुछ समय तक आपसी अंतरों को भुलाकर ठोस व कारगर नीति अपनायें, तभी आतंकवादी और उग्रवादी गतिविधियों पर अंकुश लग सकता है. इतने बड़े देश के चप्पे-चप्पे पर चौबिसों घंटे सतर्कता से निगरानी रखना मात्र सरकारी एजेन्सियों के लिए संभव नहीं है. यह सुखद है कि अनेक मुस्लिम संघठनों ने "आईएसआईएस" की गतिविधियों की भर्त्सना की है.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

‘कथाबिंब’ का जुलाई-सितंबर ’१५ अंक मिला, इस अंक में डॉ. गायत्री कमलेश्वर की ‘अतीत की शाख पर’ बेहद अच्छी कहानी है, वे इतनी समर्थ कथाकार थीं, यह जानकर ख़ुशी हुई. शायद कमलेश्वर जी के विराट व्यक्तित्व की वजह से गायत्री जी का कथाकार उभरकर सामने नहीं आ सका... नारी मन की इतनी अच्छी-मज़बूत कहानी कम कथाकारों के हिस्से में दर्ज़ है, ‘पहाड़ों की नर्म धूप’ भी अद्‌भुत कहानी है. नीरजा हेमेंद्र जी को इसके लिए बधाई और बृजमोहन की कहानी ‘कोटर वाले कक्का’ तो कभी नहीं भूलने वाली कहानी है. अशोक गुजराती की कहानी ‘भगदड़’ भी इस अंक की एक मज़बूत कहानी है. ‘आमने-सामने’ में उनके ज़द्दोजेहद को पढ़कर उनके संघर्ष के बारे में जानकारी मिली. कम-व-बेश हरेक लेखक का यह बुनियादी जीवन होता है, तभी तो वह सृजनशील होता है. यह लेखक की मज़बूती है. ‘सागर-सीपी’ में दिनेश प्रभात जी ने खुलकर बड़ी बेबाक़ी से अपनी बेबसी, दुख, प्रेम, सृजनशीलता, अपनों की नफ़रत को उजागर किया है. उनकी ये पंक्तियां वाकई उनके जीवन के प्रेम को बयान करती हैं —

“पांव पड़े ज्यों ही वसंत के, टहनी लचक गयी,
दिल की बात कली के मुंह पर आकर अटक गयी.”

बहुत ख़ूब! मेरा दुर्भाग्य कि उन्हें बहुत कम पढ़ पाया हूं और यह भी दुख है कि भोपाल-विश्व हिंदी सम्मेलन में जाकर भी उनसे नहीं मिल पाया. जबकि ‘अशोक गार्डन’ से हमारा गुज़र भी हुआ....

- सेराज खान बातिश

३-बी, बंगाली शाह वारसी लेन, खिदिरपुर, कोलकाता-७०००२३.

‘कुछ कही, कुछ अनकही’ हर बार मन को छू लेती है किंतु इस बार (जुलाई-सितंबर २०१५ अंक) तो ऐसे लगा जैसे कहीं इन्स्ट्यूशन ही कार्यरत हुआ हो, वही सारे मुद्दे जो चैन नहीं लेने देते. रात-दिन मन मस्तिष्क को उद्वेलित किये रहते हैं, और शायद हर सोचने वाले की चिंता का कारण बने हुए हैं आपने अपने इस कॉलम में शामिल किये हैं. ८६ वर्ष की लंबी आयु में अंग्रेज़ों के राज से अब तक मन इतना विचलित कभी नहीं हुआ था जितना आज है. हर ओर घिरता अंधेरा ही अंधेरा नज़र आता है. आज के हालात को देखकर कभी-कभी लगने लगता है कि हमारी सैकड़ों वर्ष की ग़ुलामी का कारण हम स्वयं ही रहे हैं. संभवत: आज़ादी हमें रास नही नहीं आती. देश की स्थिति ऐसी लगती है जैसे बिना मास्टर की सरकारी स्कूल की तीसरे दर्ज़े की क्लास. जो जिसके जी में आता है कर रहा है, बोल रहा है. कोई किसी को रोकने–टोकने वाला नहीं है. न्यूज़ चैनलों के बारे में तो कुछ कहना ही बेकार है. यही दुर्दशा सीरियलों की है. हनुमान की पूंछ की भांति लंबे खिंचते मगर महज़ बक़वास. दर्शकों की रुचि-अरुचि की जैसे उन्हें परवाह ही नहीं. ‘सूचना का अधिकार’ को धीमा ज़हर दिया जाने लगा है. हर ठीक चलते संस्थान को अव्यवस्थित करने की जैसे मुहिम चलायी जा रही है. न जाने कहां-कहां से कैसे-कैसे लोग ला-लाकर प्रतिष्ठित किये जा रहे हैं. महंगाई ऐसी जो न कभी देखी न सुनी. ये तथाकथित नेता कि जिनकी कार्यवाहियों को देख घिन आती है. एक नागनाथ दूजा सांपनाथ. बाबाओं में अधिकांश ढोंगी और चरित्रहीन. करोड़ों की संपत्ति संजोये हुए. किस-किस दुर्दशा की चर्चा करें. मन बहुत दुखी है. आशा की कोई क्षीण-सी भी किरण किसी ओर से भी दिखायी नहीं देती. ऐसी बेबसी और लाचारी पहले कभी महसूस नहीं की थी. भगवान ही भला करे. कोई चमत्कार घटित हो जाये.

-ओमप्रकाश बजाज

‘विजय विला’, १६६ कालिंदी कुंज,
अग्रवाल पब्लिक स्कूल के पास, पिपलिहाना,
रिंग रोड, इंदौर-४५२०१८

‘कथाबिंब’ का जुलाई-सितंबर ’१५ अंक पढ़ा. सर्वप्रथम धन्यवाद देना चाहती हूं कि आपने गायत्री कमलेश्वर